शब्द–ब्रह्म
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2320 – 0871
17 अक्टूबर 2014

सामाजिक अस्पृश्यता का साहित्य

नानक चन्द गौतम, (शोधार्थी)
नितिन चंद्रा (शोधार्थी)
गौतम बुद्ध विश्वविद्यालय
ग्रेटर नोएडा, उत्तरप्रदेश, भारत

शोध संक्षेप

साहित्य समाज का दर्पण होता है और साहित्य का प्रादुर्भाव उसके सृजकों की सामाजिक, दार्शनिक और सांस्कृति पृष्ठभूमि से होता है। समाज में जिस प्रकार की समस्याएं और चुनौतियां विद्यमान होती हैं, उन समस्याओं से संबंधित साहित्य में सामाजिक समस्याओं का वर्णन और उल्लेख मिलता है। यदि सामाजिक दृष्टिकोण से देखा जाये तो लोकतांत्रिक युग में दलित साहित्य ने साहित्य के क्षेत्र में अपनी पकड़ मजबूत बना ली है और यह सर्वविदित है कि दलित साहित्य दलितों और गैरदलित साहित्यकारों के द्वारा लिखा गया, लेकिन अंतर है इस बात का है कि दलित साहित्य को लिखने में विरोधाभास रहा है। दलित साहित्य सामाजिक व्यवस्था की सच्ची तस्वीर पेश करता है। इस शोध पत्र के माध्यम से यह प्रकाश डालने का प्रयास किया है कि दलित साहित्य सामाजिक अस्पृश्यता का साहित्य है न कि मजदूरों, महिलाओं और आदिवासियों का साहित्य है। दलित साहित्य ने भारतीय समाज व्यवस्था को प्रभावित किया है।

प्रस्तावना

विश्व के अधिकांश देशों में भी सामाजिक असमानता की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। रोम में स्लेव, ब्रिटेन में विलियन्स, स्पार्टन में हेलोटस, अमेरिका में अप्रफो-अमेरिकन और जर्मनी में यहूदी नस्ल की समस्या से ग्रसित थे और भारत में दलित अस्पृश्यता की समस्या से पीडित थे। ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो भारत में दलित समाज सदियों से सामाजिक, आर्थिक, धर्मिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकारों से वंचित रहा है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखा जाये तो दलित साहित्य अस्पृश्य समाज की सामाजिक दशाओं में होने वाले बदलाव का साहित्य है और इसीलिए वर्तमान में जो दलित साहित्य लिखा जा रहा है, उसका उद्देश्य दलित समाज में चेतना पैदा करना है, जिसे दलित साहित्य की अभिव्यक्ति भी कहा जा सकता है। यह कहना गलत न होगा कि वैश्वीकरण के युग में दलित साहित्य ने दलित समाज को नई पहचान दिलाई है और दलित समाज को उनकी ऐतिहासिक वेदना का रहस्योघाटन करके चेतना जागृत की है। दलित लेखक और दलित साहित्यकारों ने दलित समाज की जिजीविषा को अपनी लेखनी के द्वारा उकेरा है जो अपमान सहन किया है उन्होंने हजारों वर्षो से लेकिन गैर दलित साहित्यकार दलित साहित्य का खंडन करते हैं। आज दलित साहित्य ने अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है। सामाजिक व्यवस्था में बदलाव के लिए यह नितांत आवश्यक है कि समाज के सच्चे स्वरुप को दर्शाने के लिए साहित्य हो, क्योंकि साहित्य ही

समाज का मानसिक विकास करता है और समाज में जागरुकता लाने में अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। दलित साहित्य आज के युग का ज्वलंत मुद्दा ही नहीं अपितु दलित समाज की वेदनाओं और सामाजिक अन्यायों को जनमानस पटल पर रखने में कामयाब हो रहा है। यही कारण है कि वर्तमान में दलित साहित्य, दलित चेतना, दलित संस्कृति, दलित राजनीति और दलितों के सामाजिक सरोकारों से लेकर विश्वव्यापी विमर्श और चिंतन हो रहे हैं। यह कहना गलत न होगा कि दलित साहित्य को जानने के लिए सर्वप्रथम दलित शब्द को परिभाषित करना होगा।

दलित शब्द की अवधारणा

घनश्याम शाह का मानना है कि दलित गरीब और अस्पृश्य तबके की पहचान का शब्द है, जिसे संवैधानिक एवं प्रशासनिक भाषा में अनुसूचित और अनुसूचित जनजाति के नाम से जाना जाता है, जो संविधान के अनुच्छेद 341-1 में चिन्हित है। दलित शब्द का अर्थ आमतौर पर जनसंख्या के उस अपमानित, शोषित, वंचित, और उत्पीड़ित वर्ग से है जो परम्परागत आधार पर सदियों से अपने सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक अधिकारों से वंचित रहा है। दलित समाज ने अपने शोषण, उत्पीड़न और मानव अधिकार प्राप्त करने हेतु जो निरन्तर प्रयास किये उनसे भारत में दलित साहित्यकारों ने दलित साहित्य का निर्माण किया। हरबर्ट मार्कुस के शब्दों में कहें तो दलित चेतना एक प्रति-सांस्कृतिक चेतना है जिसका उद्देश्य पुरातन् मान्यताओं पर आधारित सामाजिक और सांस्कृतिक तिलिस्म को तोड़ना है लेकिन जीवन मूल्यों की खोज एवं मानवीय सरोकार दलित साहित्य की मूलधारा में अन्तर्निहित है। दलित साहित्य सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक अधिकारों एंव सुरक्षा की मांग भी करता है जो दलित पीड़ा एवं अंतर्द्वंद्व को अभिव्यक्ति प्रदान करती है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि के शब्दों में दलित शब्द हमारे लिए बहुत ही प्रेरणादायक शब्द है, हम इसे दल के साथ जोड़ते हैं जो सामूहिक तौर पर कार्य करता है, जीवन को सामाजिक तरीके से जीता है और समाज से अलगाव दूर करता है। प्रो. गोपाल गुरु का मानना है कि दलित शब्द उस पहचान को बताता है कि वह कौन है ? यह शब्द सामाजिक बदलाव और क्रांति की भावना के लिए संघर्ष का संदेश देता है। दलित के विभिन्न शब्दकोशों में विभिन्न अर्थ मिलते हैं, जिसमें से सदियों से जाति व्यवस्था के आधार किये गये दलितों के शोषण और उत्पीडन को प्रदर्शित करते हैं। दलित वह है जिन्हें हजारों वर्षों से सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनैतिक अधिकारों से वंचित करके गांवों, नगरों की सीमाओं के बाहर रखा गया अस्पृश्यता के कारण, कभी दास के रुप में, कभी चांडाल के रुप में, कभी अत्यंज के रुप में, कभी अछूत के रुप में, कभी हरिजन के रुप में, कभी अस्पृश्य के रुप में, कभी शूद्र के रुप में।

दलित पैंथर्स ने अपने घोषणापत्र में दलित शब्द को परिभाषित करते हुए कहा है कि दलित का अभिप्राय लगाया जाता है, अनुसूचित जाति, बौद्ध, कामगार, मजदूर, गरीब, किसान, खानाबदोश जातियां, आदिवासी और महिलाएं। यदि हम ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखें तो दलित वह है जिसे सदियों से मानवाधिकारों से वंचित करके गांवों और नगरों की सीमाओं के बाहर रखा गया और भारतीय संविधान में जिन्हें अनुसूचित जाति का दर्जा दिया है। ओम प्रकाश वाल्मीकि ने लिखा है कि दलित शब्द भाषावाद, अलगाववाद,

जातिवाद, क्षेत्रवाद को नकारता है और जो पूरे देश को एकता के सूत्र में बांधने का काम करता है क्योंकि दलित शब्द अस्पृश्य समाज को सामाजिक पहचान देता है जिनकी गौरवपूर्ण संस्कृति लुप्त हो गई थी। बाबूराव बागुल ने दलित को शक्ति के रुप में देखा है, जो वर्णव्यवस्था और समग्र वैचारिक व्यवस्था को ध्वस्त करना चाहता है और ऐसा व्यक्ति केवल भारत का ही नहीं अपितु अमेरिका का भी हो सकता है। दलित अस्पृश्य समाज की सामाजिक चेतना का प्रतीक है जिसने दलितों को उनके ऐतिहासिक शोषण और कुचलन के बारे में अहसास कराया जिससे दलित समाज में चेतना जागृत होने लगी है और क्यों न होनी चाहिए जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि दलित साहित्यकारों ने अस्पृश्य समाज की समस्याओं और सवर्ण समाज की मानसिकता को उजागर करने का साहसिक कार्य किया है और यही कारण है कि आज दलितों का अपना साहित्य है।

दलित साहित्य की अवधारणा

दलित साहित्य डॉ.अम्बेडकर की विचारधारा को अपना मूलस्रोत मानता है। दलित साहित्य पर भी प्रकाश डालना नितांत आवश्यक है कि दलित साहित्य क्या है ? दलित साहित्य का केंद्र बिन्दु मनुष्य है और इसीलिए दलित साहित्य दलितों की पीड़ा, उत्पीड़न, अन्याय, चीख, वेदना, आक्रोश और अस्पृश्य समाज के सामाजिक परिवर्तन का साहित्य है जिसका सपना समतामूलक समाज का निर्माण करना है। दलित साहित्य विचारों की वह मिसाइल है जो दलितों, अस्पृश्यों, शोषितों, उपेक्षितों को नवविकास और नवनिर्माण के लिए प्रेरित करता है जिन्हें सामाजिक बहिष्कार का सामना करना पड़ा। दलित साहित्य पुनर्जन्म, भाग्य, भगवान, धर्म के विधि विधानों को नकारता है और इसांन को इंसान से जोडने का प्रयास करता है और यह कहना गलत न होगा कि दलित साहित्य सदियों से सोये अस्पृश्य समाज को जगाता है, उसमें मानवाधिकारों को प्राप्त करने हेतु जोश भरता है, दलित समाज में क्रांति की ज्वाला उत्पन्न करता है, उनमें स्वाभिमान और आत्मसम्मान की लडाई लडने के लिए प्रोत्साहित करता है लेकिन दलित साहित्यकार समाज में समरसता, बंधुत्व और समता के लिए कार्य करता है और पुरातन सामाजिक मान्यताओं की कड़ी निंदा करता है।

दलित साहित्य उस अस्पृश्य समाज की वेदनाओं, चीखों, जिजीविषाओं, चुभन, सामाजिक अन्यायों का प्रमाण है जो उन्होंने सैकड़ों वर्षो से सहा है। इसीलिए दलित साहित्य सामाजिक अस्पृश्यों की संहिता का साहित्य ही है लेकिन गैर दलित साहित्यकार दलित साहित्य का मजाक बनाए हुए है। कुछ हिन्दी साहित्यकार दलित साहित्य को सहानुभूति और स्वानुभूति का साहित्य मानते है लेकिन गैर दलित साहित्यकारों को मान ही लेना चाहिए। असलियत में दलित साहित्य में वास्तविकता वही प्रस्तुत कर सकता है जिसने जनमानस पटल पर उन चीजों का स्वाद लिया हो। दलित साहित्य में हिन्दू सामाजिक संस्थान से उत्पन्न भेदभाव और शोषण के विरुद्ध प्रतिकार की रोष अभिव्यक्ति है और यह मानना होगा कि दलित साहित्य सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक और राजनैतिक समता का सर्मथक भी है और अंधविश्वासों और कर्मकांडो का विरोधी भी है।

हमें यह स्मरण रखना होगा कि ब्राह्मण साहित्य को बौद्धों ने सर्वप्रथम चुनौती दी थी और आज

गैर दलित साहित्यकारों को दलित साहित्यकार चुनौती का विषय बन गये हैं, क्योंकि दलित साहित्यकारों ने हिंदू धर्म और वर्ण व्यवस्था का खंडन किया है। डॉ. अम्बेडकर ने एक बार कहा था कि जब हिंदुओं को वेदों की आवश्यकता पड़ी तो उन्होंने यह काम वेदव्यास को सौंप दिया, जो सवर्ण नहीं थे, जब हिंदुओं को एक महाकाव्य की आवश्यकता महसूस हुई तो यह काम एक वाल्मीकि को सौंप दिया जो एक अछूत थे और जब हिंदुओं को एक संविधान की जरुरत पड़ी तो वह काम मुझे सौंप दिया। दलित साहित्यकार यह समझ गये हैं कि ब्राह्मणवादियों ने दलितों की योग्यता का सदैव दुरुपयोग ही किया है और दलित साहित्य ब्राह्मण धर्म और उनके नियमों को नकारने लगा है जो परिवर्तन के प्रतीक के तौर पर देखे जा सकते हैं। दलित साहित्य का मूल उद्देश्य वर्ण व्यवस्था और हिंदू धर्म पर आधारित सामाजिक नियमों और शर्तों का तिरस्कार करना है गैर दलित साहित्य उनके इस निर्णयों के आलोचक हैं।

दलित साहित्य की परिभाषा

21वीं सदीं में दलित साहित्य को लेकर हिंदी समीक्षकों और हिन्दी रचनाकारों में यह विवाद का विषय बना हुआ है कि दलित साहित्य क्या है। कुछ साहित्यकार दलित साहित्य को सहानुभूति और स्वानुभूति का साहित्य बताते हैं तो कुछ दलित साहित्य को सौंदर्यता का साहित्य बताते हैं, लेकिन निर्विवाद यह कहा जा सकता है दलित साहित्य सामाजिक अस्पृश्यता का साहित्य है क्योंकि दलित साहित्य सदियों से शोषित और वंचित उस समाज की सामाजिक जिजीविषा का चित्रण किया गया है जो उन्होंने स्वयं भोगा है। ओमप्रकाश वाल्मीकि का मानना है कि दलित साहित्य आज के समाज की यथार्थवादी सोच का परिणाम है जो सामाजिक यथार्थ की समूची पीड़ा को वहन करने की क्षमता रखता है। दलित लेखक बार बार कह रहे हैं कि अब तक का इतिहास अस्पृश्य समाज की उपेक्षा, दमन, शोषण और उनके सामाजिक तिरस्कार का रहा है और ओमप्रकाश वाल्मीकि कहते हैं कि दलित यदि गैर दलित के पास जाता है, तो वह एक गुलाम की तरह आता है, यदि गैरदलित जब दलित के पास आता है तो मालिक की तरह आता है। कहने का मतलब यह है कि ओमप्रकाश वाल्मीकि गैरदलितों के लेखन को शंका की दृष्टि से नहीं देखते हैं बल्कि यह समझाने का प्रयास करते हैं कि वर्तमान में जो ये जातिवाद, क्षेत्रवाद और अस्पृश्यता की जो समस्या वो हिंदू धर्म और वर्ण व्यवस्था की ही देन है और दलित साहित्य ने ढ़ोंगी नीतियों और नियमों का तिरस्कार करके अस्पृश्य समाज के वास्तविक स्वरुप को प्रदर्शित करने का कार्य किया है।

डॉ.धर्मवीर दलित साहित्य के बारे में बताते हैं कि ''दलित साहित्य का साहित्य रुदाली तक सीमित नहीं माना जा सकता है अपितु वे दलितों के स्वप्न, दलितों की कल्पना और दलितों की ख्यालों को दलित साहित्य में शामिल करते है और उनके कहने का तात्पर्य है कि दलित साहित्य की परिभाषा में बंधन से मुक्ति की छटपटाहट खोजी जानी चाहिए।''

जय प्रकाश कर्दम के शब्दों में ''दलित साहित्य दलित समाज को, भारत को एक सूत्र में पिरोने का काम करता है। साहित्य जोड़ता है, तोड़ता नहीं है और इसीलिए दलित साहित्य का उद्देश्य भी अलगाव पैदा करना नहीं अपितु समाज और देश का हिस्सा बनकर उसे समता मूलक,

न्यायपूर्ण और प्रगतिशील बनाने में अपनी रचनात्मक भूमिका निभाना है।''

रजत रानी मीनू का मानना है कि ''दलित साहित्य के पक्ष में यह कहना गलत नहीं होगा कि अनुभूति की प्रमाणिकता दलित साहित्य में अपेक्षाकृत अधिक है क्योंकि दलित विषयक रचना संवेदना और स्वानुभूति का प्रसार है। दलित साहित्य के निषेध का स्वर अभी भी सुनाई पड़ता है। जनवादी साहित्य, छायावादी, प्रयोगवादी, कालावादी साहित्य, संत साहित्य, स्त्री साहित्य, बाल साहित्य इत्यादि वर्गीकरण मतलब इतने प्रकार के भेद चल रहे है तो दलित साहित्य की पुरानी कसौटियों को बंदी नहीं बनाया जा सकता है।''

कंवल भारती का कहना है कि ''दलित साहित्य की संस्कृति में जहां मानव की प्रतिष्ठा के लिए संघर्ष है, दासता के विरुद्ध क्रांति का गान है, अन्याय और शोषण के खिलाफ प्रतिरोध का स्वर है, समता है, करुणा है, संवेदना है, अहिंसा है, वहीं वह विश्व बंधुत्व की सर्मथक परिधियों से मुक्ति चेतना का सर्मथक है। यदि दलित साहित्य की संस्कृति को एक वाक्य में कहना हो तो वह वर्ण व्यवस्था मुक्त जीवन पद्धति और असाम्राज्यवादी सत्ता का नाम है।''

माताप्रसाद लिखते हैं कि दलित साहित्यकार स्वानुभूति का साहित्य लिखते हैं और गैरदलित साहित्यकार सहानुभूति का साहित्य लिखते हैं।''

डॉ.चमनलाल ने साहित्य का वर्णन करते हुए बताया है कि ''दलित साहित्य अपनी प्रेरणा महात्मा बुद्ध से आरंभ करता है और मध्यकाल के संत कवियों कबीरदास, रविदास चोखमेला, तुकाराम, नामदेव, दयाबाई, और सहजोबाई आदि को अपनी परंपरा का हिस्सा मानता है। गौरखनाथ और सिद्धनाथ कवि भी दलित साहित्य परंपरा में माने जाते हैं।''

शरण कुमार लिंबाले का कहना है कि दलित साहित्य अछूतों का अनुभव है और जाति व्यवस्था का कलंक अलग कर दिया जाए तो, तो सर्वहारा का जीवन एक जैसा होता है। प्रत्यक्ष जाति व्यवस्था होने के बावजूद उसे नकार कर सभी का जीवन एक समान है, कहना वास्तविकता को नकारना और यथार्थ पर लीपापोती करना है। अछूत के अनुभव की ओर से आंखे नहीं मोड़ी जा सकती, क्योंकि यह अनुभव हजारों वर्षो के, हजारों मनुष्यों का है। दलित साहित्य का जन्म सामाजिक अस्पृश्यता की कोख से हुआ है और यहीं उसकी विशेषता है।

उपर्युक्त विद्वानों की परिभाषाओं के आधार पर यह विदित होता है कि दलितों की सामाजिक दशा, सामाजिक अन्याय, उनकी परेशानी, उनकी वेदना, उनकी जिजीविषा, गरीबी और उपेक्षापूर्ण जीवन की वास्तविक दशाओं और उनकी समस्याओं को जनमानस के पटल पर लाने वाला साहित्य ही दलित साहित्य है और दलित साहित्य उनकी चुभन और घुटन का साहित्य भी जो अनुभव किया है उन्होंने सदियों से और दलितों की वेदना का अग्रदूत दलित साहित्य ही है। साहित्य की सभी रचनाओं में दलित साहित्य की अभिव्यक्ति उभरकर सामने आई है। कहने का मतलब है कि दलित साहित्य की भाषा अलग है, दलित साहित्य का यथार्थ अलग है लेकिन विभिन्नताएं होते हुए वर्णव्यवस्था और हिंदू मानसिकता को खंडित करने में सहायक रहा है। दलित साहित्य केवल दलितों के अधिकार एवं मूल्यों तक ही सीमित नहीं है अपितु सामाजिक प्रसंगों के साथ जुड़कर समस्त समाज की

अस्मिता और मूल्यों को प्रधानता प्रदान करता है और यह कहना अतिशियोक्ति नहीं होगा दलित साहित्य उत्तर आधुनिकता और समकालीनता की अग्रसर अवश्य हुआ है।

दलित साहित्यकार अपने लेखन के द्वारा अपने भोगे गए यथार्थ को उजागर करने का प्रयत्न करता है। और दलितों के यथार्थ की भाषा वह भाषा कदापि नहीं हो सकती, जिसे वातानुकूल कक्षों में नर्म गद्दों पर बैठकर डालर जैसे कड़कदार कागज पर कल्पना की स्याही में लपेटकर गढ़ा जा सकता है। वर्तमान में दलित साहित्य ने दलितों के सम्मान, प्रतिष्ठा, अस्मिता के साथ साथ दलितों के विकास और उत्थान को भी स्वयं से प्रतिबद्ध कर लिया है। दलित साहित्य का केंद्र बिन्दु अस्पृश्य समाज है, इसीलिए दलित साहित्य न तो वेदों की प्रमाणिकता को स्वीकार करता है और यहां तक कि न ही ईश्वर की प्रभुसत्ता को स्वीकार करता है, अगर स्वीकार करता है तो दलित साहित्य के प्रणेता डॉ. अम्बेडकर की विचारधारा और उनके सिद्धांतों को जिन्होंने दलितों को एक मार्ग दिखाया।

दलित साहित्य ने वर्णव्यस्था और हिन्दू धर्म के ठेकेदारों के जिस्म पर तीव्र प्रहार किया है और यही कारण है कि कुछ गैरदलितसाहित्यकार दलित साहित्य पर उंगली उठाने लगे हैं और कहते हैं कि दलित साहित्य गालियों और अमानवीय शब्दों का एक ग्रंथ है लेकिन उन लोगों को यह अवश्य समझना चाहिए जिनका सैकड़ों वर्षों से शिक्षा पर अधिकार नहीं था तो आज अचानक उसे अपने विचारों को प्रेषित करने का अधिकार मिल गया है तो वह अपने लेखन में छंद, दोहा, अलंकार, रस, व्याकरण और भाषा की परवाह नहीं करेगा अपितु आज उसके दिल में एक उमंग है, छटपटाहट है और पूरी सच्चाई से हिन्दू समाज के स्वरुप को प्रदर्शित करने का प्रयास करता है जिसे सवर्ण स्वीकार नहीं करते हैं बल्कि उसकी योग्यता की आलोचना करते हैं, क्योंकि जो समाज की उनकी दासता के चंगुल में था, आज वह अपना अलग साहित्य गढ़ रहा है इसीलिए भाषा और शब्द इतने अनिवार्य नहीं है जितनी अनिवार्य है उनकी सामाजिक समस्याएं और उनके विकास में आने वाली बाधाएं जो बाधाएं उत्पन्न की गई है, सवर्ण समाज के द्वारा इसीलिए गैर दलितसाहित्यकारों को उनकी आलोचना न करके उनके साहित्य को स्वीकार करना चाहिए और उनकी सराहना करनी चाहिए कि आजादी के 68 वर्षों के बाद ही दलित साहित्य ने अपनी अनुपम पहचान बना ली है हिन्दी साहित्य में और जिसका प्रोत्साहन जाता है।

'जूठन' से पता चलता है कि ओमप्रकाश वाल्मीकि सवर्णों द्वारा खाना खाने के बाद फेंके गए पत्तल से बची खाद्या सामग्री को उठाकर बचपन में अपनी भूख मिटाया करते थे। कहने का तात्पर्य यह है कि क्या कोई ऐसा कर सकता है यह नितांत सत्य है कदापि नहीं कर सकता और ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा अस्पृश्यता की वह भावना कोई सवर्ण कैसे अनुभव कर सकता है और उसका लेखन कदापि दलित लेखन नहीं बन सकता। यह कहना गलत न होगा कि दलित साहित्य अस्पृश्य समाज के बदलाव का साहित्य है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचनों और तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि दलित साहित्य सामाजिक

अस्पृश्यता का साहित्य है न कि आदिवासियों, मजदूरों और स्त्रियों का साहित्य है। यदि देखा जाये तो दलित साहित्य अस्पृश्य समाज में आने वाले बदलावों की संहिता है। डॉ.अम्बेडकर ने सही कहा था कि भारतीयों में सामाजिक विवेक का अभाव है क्योंकि वर्तमान में दलित साहित्यकार अस्पृश्य समाज की सामाजिक समस्यओं और उनके जीवन की चुनौतियों को उकेरने लगा है तो गैर दलित साहित्यकार उनक लेखन को पचा नहीं पा रहे है क्योंकि अभी तक शिक्षा और लेखन पर सवर्ण समाज का ही अधिकार था इसीलिए सवर्ण समाज को भी दलितों के साहित्य को सामाजिक अस्पृश्यता का साहित्य मानना चाहिए और यह सत्य है कि दलित साहित्य वर्णव्यस्था की बेड़ियों और सामाजिक पुरातन मान्यताओं को तोडकर अस्पृश्य समाज में नई क्रांति पैदा कर रहा है वो है देश और समाज में सामाजिक समरसता, बंधुत्व और सौहार्द की भावना को विस्तार करने का जिससे देश को जातिविहीन और समाज में समता की भावना निरुपित की जा सकें।

संदर्भ सूची

1 शाह घनश्याम, दलित आफ आइडेंटिटी एंड पालिटिक्स, नई दिल्लीः सेज प्रकाशन, 2007, पृष्ठ-19

2 कीर, धनंजय, डा अम्बेडकर लाइफ एंड मिशन, बम्बइः पापुलर प्रकाशक, 1981, पृष्ठ, 118

3 नामदेव, दलित चेतना और स्त्री विमर्श, नई दिल्लीः क्लासिकल, 2009, पृष्ठ 38-39

4 वही, पृष्ठ- 41

5 पटेल, मनोजकुमार, भारतीय दलित साहित्य, दिल्लीः दर्पण प्रकाशन, 2008, पृष्ठ-42

6 वही, पृष्ठ- 40

7 वही, पृष्ठ- 42

8 वंद्योपाध्याय, कुमार, प्रवीण, दलित प्रसंग, दिल्लीः शिलालेख, 1999, पृष्ठ-135

9 पटेल, मनोजकुमार, भारतीय दलित साहित्य, दिल्लीः दर्पण प्रकाशन, 2008, पृष्ठ 42-43

10 नामदेव, दलित चेतना और स्त्री विमर्श, नई दिल्लीः क्लासिकल, 2009, पृष्ठ 41

11 वहीं, पृष्ठ 43

12 रामचंद्र, दलित साहित्य आशय, आन्दोलन और अवधारणा, नई दिल्लीः दलित संघर्ष ई-जनरल, वाल्यूम-1, इश्यू-1, जनवरी-मार्च, 2012, पृष्ठ-88